International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(I), April - June, 2021, pp.146-150

"साहित्य में प्रकृति और कोरोना" (वर्तमान चुनौतियाँ)

डॉ. हिमानी सिंह*

सार

परिवर्तन का कोई भी क्षण साहित्य की परिधि से अछूता नहीं है। जब–जब मनुष्य ने स्वयं को सर्वशक्तिमान घोषित किया तब–तब प्रकृति ने मनुष्य की सब क्षुद्र सोच और पाशविक वृत्ति को खोखला साबित किया। प्रकृति में एक अदृश्य चेतना निहित है जो हमें निरन्तर सावधान करती है, संदेश देती है। तभी तो कवि पंत कह उठते है कि – "न जाने नक्षत्रों से कौन, निमंत्रण देता मुझको मौन।" प्रकृति और मानव का सम्बन्ध अविच्छिन्न है, लेकिन मानव ने प्रकृति का इतना भाोषण और दोहन किया कि परिणाम स्वरूप प्रकृति ने भी अपना विकराल रूप मानव को दिखा दिया। 18वीं सदी से लेकर 21वीं सदी तक प्लेग, हैजा, स्पेनिश फ्लू, सार्स, स्वाइन फ्लू, इबोला, निपाह और अब कोरोना। ये सब प्रकृति प्रदत्त चुनौतियाँ हमारे समक्ष उपस्थित हैं। निज स्वार्थ हेतु, प्राकृतिक जैव–विविधता को समाप्त करने के कारण महामारी और प्राकृतिक आपदाओं ने मानव जीवन के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। तब प्रकृति ने स्वयं को स्वच्छ और स्वस्थ करने का बीड़ा उठाया। कोरोनाकाल में जहाँ मानव–जीवन त्राहिमाम् कर कराह रहा था, वहीं प्रकृति में पशु–पक्षी, नदियाँ, सागर, वन, वृक्ष, धरती, आकाश उन्मुक्त रूप से भवास ले रहे थे। वर्षों बाद चहकती हुई गौरैया छत पर फुदकती दिखाई दी। नदियों के स्वच्छ जल–तल में सब कुछ साफ दिखने लगा। प्रदूषण मुक्त आकाश में तारों को निहारना सुखद प्रतीत होने लगा और कवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ "नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।" आज प्रासंगिक लगने लगी। हमें इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि हमारा अस्तित्व प्रकृति से है। प्रकृति का संरक्षण, उन्नयन और विकास वास्तव में हमारा ही विकास है। प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और अपने उत्तरदायित्व को समझकर हम सब कोरोना जैसी वैश्विक महामारी का सामना कर सकेंगे और सामाजिक समता के साथ बेहतर जीवन जी सकेंगे। सकारात्मक चिन्तन और मानव हित का ध्यान रखने में साहित्य सदैव जागरण का संदेश देता रहेगा।

शब्कोशः *कोरोना, जैव–विविधता, प्राकृतिक आपदा, नीलांबर*

प्रस्तावना

परिवर्तन का कोई भी क्षण साहित्य की परिधि से अछूता नहीं है। वैश्विक समाज में संस्कृति और प्रकृति में होने वाले परिवर्तन पर साहित्य की पैनी दृष्टि सदैव बनी रहती है। कोरोना काल में लॉक डाउन की स्थिति में भी संवेदनशील साहित्यकार सजग था। उसने मानव जीवन और प्रकृति के बदलते स्वरूप को बहुत बारीकी से अनुभव किया। साहित्य में प्रकृति के विविध रूप स्थापित हुए है। प्रत्येक काल खण्ड के साहित्यकारों ने प्रकृति की विविध छवियों को जैसा अनुभव किया यथार्थ रूप में वैसा ही उकेरा। इसीलिए साहित्य को जीवन

---

* सह आचार्य 'हिन्दी'।

और प्रकृति का प्रतिबिम्ब कहते हैं। प्रकृति और मानव का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। सृष्टि के निर्माण से ही मानव और प्रकृति में अद्वैतभाव विद्यमान है। दोनों को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। वे एक दूसरे के पूरक है। प्रकृति में एक अदृश्य चेतना निहित है जो हमें निरन्तर सावधान करती है, संदेश देती है तभी तो कवि पंत कह उठते है कि ''विश्व की पलकों पर सुकुमार/विचरते हैं जब स्वप्न अजान/ न जाने नक्षत्रों से कौन ?/ निमत्रण देता मुझको मौन''।[1] विश्व की समस्त भाक्तियाँ एक ही छवि से प्रकाशमान है। प्रकृति में जो कुछ भी गोचर है या उत्पन्न है वह उसी विराट सत्ता से निष्पन्न है। महादेवी वर्मा कहती है कि– ''उसी का मधु से सिक्त पराग/और पहला वह सौरभ–भार/तुम्हारे छूते ही चुपचाप/हो गया था जग में साकार।[2]

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को चैतन्य सत्ता स्वरूप माना गया है। वह हमारी पालक है। प्रारम्भ से ही हम सब प्रकृति में सूक्ष्म चेतन तत्त्व की उपस्थिति अनुभव करते हैं। तभी तो कवि कहता है कि– ''एक ही तो असीम उल्लास/विश्व में पाता विविधभास/तरल जलनिधि में हरित विलास/शान्त अम्बर में नील विकास।''[3] प्रकृति हमारे लिए पूज्य है। हम इस संसार में जो कुछ भी प्राप्त करते है प्रकृति द्वारा ही पाते हैं। साहित्य में प्रकृति–चित्रण के विविध संस्कार है इसमें प्रकृति में चैतन्य स्वरूप की अनुभूति है तो अध्यात्म की गहराई भी है। राष्ट्रीय चेतना का उद्घोष है तो मानवीय मनोभावों की अनुगूंज भी है। नैतिक और सांस्कृतिक जागरण का भाव है तो सम दृष्टि की सर्वमंगला भी है। सत्य और भाुभ में ही प्रकृति का सौन्दर्य निहित है लेकिन ''अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा?/ यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।''[4] मनुष्य में लालच की सोच विकसित होते ही प्रकृति के भोषण और दोहन की व्यथा प्रारम्भ होती है।

समकालीन साहित्य में प्रकृति भावनात्मक और आात्मीय स्पर्शो से हट कर मानव की क्षुद्र और पाशविक वृत्ति का शिकार बनने लगती है। साहित्यकार समय की हर दुखती रग पर उँगली रखता चलता है। ''खरगोश बन कर दौड़ रहे हैं तमाम ख्वाब/फिरता है चाँदनी में कोई सच डरा–डरा।'' दुष्यन्त कुमार की ये पंक्तियाँ वर्तमान युग की सच्चाई और यथार्थ दृष्टिकोण दिखाती है। मनुष्य के लालच, स्वार्थ, धनलोलुपता, मानवीय मूल्यों का हास और पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के बाजार ने प्रकृति के स्वरूप को बदल दिया है। धुआँ उगलती चिमनियों और वाहनों ने कार्बन उत्सर्जन से ओजोन परत में छिद्र किये हैं। नदियों और सागरों को मलवाहिनी गन्दगी, प्लास्टिक और औद्योगिक कचरे से पाट दिया गया है। नदियों की दशा को देखकर हृदय काँप उठता है कवि करूण स्वर में कहता है– ''नदी! तू इतनी दुबली क्यों है/और मैली–कुचैली, मरी हुई इच्छाओं की तरह/मछलियाँ क्यों उतराई है तुम्हारे दुर्दिन के दुर्जल में/किसने तुम्हारा नीर हरा/कलकल में कलुष भरा/आह! लेकिन स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते/ बैंगनी हो गई तुम्हारी भाुभ्र त्वचा।''[5] नदियों की इस भोचनीय दशा के लिए मनुष्य जिम्मेदार है। निरन्तर गर्म होती धरती, पिघलते हुए ग्लेशियर, वनों का अंधाधुंध कटान, नष्ट होते वन–जंगल, टूटते हुए पहाड़, खनन, कीटनाशकों के रसायन से विषाक्त होती मिट्टी और फसलें, चतुर्दिक कूडे–करकट, पॉलीथिन से भरी धरती और पहाड़। प्रकृति के इस कलुष रूप को कोई भी सहृदय रचनाकार अनदेखा नहीं कर सकता। फल, सब्जियों और फसलों में रासायनिक खाद का दुष्प्रभाव मनष्यों पर ही नहीं वरन् पक्षियों, जीव–जन्तुओं पर भी बहुत गहरा पड़ता है और जैव विविधता का संकट गहराने लगता है। कीटनाशक युक्त विषाक्त खाद्यान्न को खाकर जब कोई जीव अपने प्राण त्याग देता है तब उस निर्जीव प्राणी को आहार के रूप में गिद्ध पक्षी ग्रहण करतें है और असमय मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। गिद्ध पक्षी की विलुप्तता पर कवि ज्ञानेन्द्र पति करुण स्वर में कहते है कि– ''उसके घोंसलों के अंडे/हरछौंह सफेद/क्यों तो हुए जा रहे हैं उनके खोल तुनुक/शायद गिद्ध भोज पशु मांस में पैबस्त कीट नाशकों के/ विषवश/असमय भंगुर/ ओह/ कब से नहीं गूँजी है किलकारियाँ/ गिद्ध भाावक की/ उसके घर अहर्निश एक डर/क्या म्रियमाण है/सुनील आकाश को मथने वाले/उसके सवरण अभिलाष/क्या अब आकाश अगोरती थकेगी/धरती पर लावारिस लाश।''[6] आज लगभग साठ हजार पौधों तथा दो हजार जीव–जन्तुओं की प्रजाति के लिए पर्यावरण में गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया है। पारिस्थितिकी तंत्र की शृंखला छिन्न–भिन्न होने से जैव विधिवता का क्रम टूट गया है।

विज्ञान और विकास की दौड़ में मानव ने विवेक का दामन छोड़ दिया है। जीवन का आरम्भ और जीवन को चलाए रखने की जटिल प्रक्रिया में प्रकृति की अहम भूमिका है। जैव–विविधता के क्रम में जीवन, वनस्पति, जीवाणु, कीड़े–मकोडे सबका अपना योगदान है। इसमें संतुलन होना आवश्यक है। इस खाद्य श्रृंखला के साथ ही सभी एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। एक भी प्रजाति का विलुप्त होना दूसरे के जीवन को प्रभावित कर देता है और यह संतुलन बिगड़ जाता है। जब–जब मनुष्य ने स्वंय को सर्व भाक्तिमान घोषित किया तब–तब प्रकृति ने मनुष्य की इस क्षुद्र सोच और पाशविक वृत्ति को खोखला साबित किया है। मानव ने प्रकृति का इतना दोहन और भोषण किया कि परिणाम स्वरूप प्रकृति ने भी अपना विकराल रूप मानव को दिखा दिया। 18वीं सदी से लेकर 21वीं सदी तक प्लेग, हैजा, स्पेनिश फ्लू, इबोला, निपाह और अब कोरोना। इस संक्रामक महामारियों का सजीव और बारीक चित्रण साहित्य में मिलता है रवीन्द्र नाथ टैगोर की काव्य रचना 'पुरातन भृत्य' में 'चेचक' तथा भारतचंद्र के उपन्यास 'श्रीकांत' में 'प्लेग' की दारुण स्थितियों का चित्रण है। फकीर मोहन सेनापति की कहानी 'रेबती' और प्रेमचन्द की 'ईदगाह' कहानी में 'हैजे' की भयावहता का वर्णन है। फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' में 'मलेरिया' और 'कालाजार' की विभीषिका का वर्णन है तो निराला के आत्मकथात्मक उपन्यास 'कुल्लीभाट' में सन् 1918 में 'फ्लू' से हुई मौतों का हृदयविदारक चित्रण है। निराला कहते हैं– ''मैं दालमऊ में गंगा के तट पर खड़ा था। जहाँ तक नजर जाती थी, गंगा के पानी में इंसानी लाशें ही लाशें दिखाई देती थी।... पलक झपकते ही मेरा परिवार मेरी आँखों के सामने से गायाब हो गया।''[7] परिवार खत्म हो जाने की पीड़ा और वेदना को भाब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। लाशों के ढेरों की यही स्थिति कोरोना काल में भी दिखी जब मनुष्य प्रकृति के समक्ष लाचार दिखा। इसी तरह इबोला वायरस के कारण दो वर्षों तक अफ्रीका महाद्वीप संकट से घिरा रहा।

निज स्वार्थ हेतु प्राकृतिक जैव–विविधता को समाप्त करने के कारण महामारी और प्राकृतिक आपदाओं ने मानव जीवन के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। खाद्य और अखाद्य के भेद को मिटा कर मानव ने अपनी कब्र स्वयं खोद ली है। नैतिक मूल्यों का हास और अत्याधुनिक भौतिक जीवन–भौली के कारण ये महामारियाँ अब सौ वर्षों के पश्चात् नहीं वरन् सात–आठ वर्षों में ही बार–बार मानव को आक्रान्त करती रहेंगी। अस्त्र–शस्त्र विहीन भीषण विश्व–युद्ध जिसमें परिवार के परिवार तबाह हो जायेंगे और मनुष्य मूक–दर्शक बना देखता रहेगा। कोरोना के इस भयावह काल में 65 वर्ष से अधिक उम्र के बुजुर्ग की पीड़ा को कवि ने इन भाब्दों में व्यक्त किया है– ''पर एक साल बाद अब जाकर हुआ/65 पार होने का एहसास/जब काल की पनाह से निकल कर/कोरोना के हवाले कर दिया गया/एक ढीठ खामोशी मुझे घूरती रहती है/बंद कारखानों की उदासी बत्तियाँ/मानो संध्या का स्वागत करना भूल गई है। अंधेरे की चुप्पी से कहीं ज्यादा भयावह होती है/ रोशनी की नीरवता।''[8] मनुष्य बीमारी से उतना धायल नहीं होता है, जितना की एकांत, अकेलेपन, निराशा और अवसाद से होता है। कोरोना के रूप में प्रकृति द्वारा दी गई यह चेतावनी मनुष्य को उसके कृत्यों के प्रति सचेत कर रही है।

प्रकृति का निरन्तर दोहन महामारी और प्राकृतिक आपदाओं के रूप में हमारे समक्ष है। उत्तराखण्ड के चमोली में ग्लेशियर टूटने से आई भीषण आपदा ने यह जताया है कि हिमालय क्षेत्र में विशाल बांधों का निर्माण पर्यावरण को तो गहरा नुकसान पहुँचा ही रहा है साथ ही सैकड़ों मौतों का भी जिम्मेदार है। धरती का बढ़ता तापमान तथा जलवायु परिवर्तन के कारण हमारे सामने पर्यावरणीय, मानवीय एवं आर्थिक नुकसान की गंभीर चुनौती है। रासायनिक प्रदूषण का एक चौंकाने वाला मामला रूस के जर्जिस्क में सामने आया है जिसके कारण वहाँ के कुत्तों का रंग नीला हो रहा है। भारत के मेघालय राज्य में बलुआ पत्थरों वाली 1700 से अधिक खूबसूरत गुफाएं है परन्तु सीमेन्ट कंपनियों का विनाशकारी खनन इन गुफाओं और प्रकृति के लिए अभिशाप बन गया है। प्रकृति के वरदान रूपी ये गुफाएं खनन से नष्ट हो रही हैं और भीत ऋतु में यहाँ की लुखा और चन्द्र नदी का जल, कारखानों से निकलने वाले रासायनिक कचरें के कारण गाढ़ा नीला हो जाता है। सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि पारिस्थितिकी तंत्र की नजाकत और मानव जीवन कितने बड़े खतरे में है। अनेक देशों के जंगलों में लगने वाली आग, टिड्डी दलों के बढ़ते हमले, कहीं आतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि ये सभी दुर्घटनाएं

प्रकृति द्वारा मनुष्य को सबक सिखाये जाने का संकेत हैं। इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि हमारा अस्तित्व प्रकृति से है। यही कारण है कि साहित्य में भी पुरातन प्राकृतिक सौन्दर्य के सन्दर्भ बदल गये हैं। परमात्मा के समक्ष जलाई जाने वाली अगरबत्ती कितने बदबूदार स्थान पर बनाई जाती है, इसे लक्षित करते हुए कवि ने करारा व्यंग्य किया है– ''कई गलियों के बीच/कई नालों के पार/कूड़े करकट/ के ढेरों के बाद/बदबू से फटते जाते इस/टोले के अन्दर/खुशबू रचते हैं हाथ।''[9]

विज्ञान कितने भी अनुसंधान कर ले, परन्तु प्रकृति अविजित है। प्रकृति की आवश्यकता मनुष्य को आज भी उतनी है जितनी सैकड़ों वर्ष पूर्व थी। कोरोना काल के एकांतवास ने मनुष्य के चिन्तन की धारा को मोड़ा और प्रकृति का सम्मान करने की शिक्षा दी। लोभ, मोह जैसे विकारों के सम्मोहन को तोड़ा क्यों कि कोरोना ने किसी के साथ भेद–भाव नहीं किया। क्या गरीब क्या अमीर, क्या छोटा क्या बड़ा सभी इसकी चपेट में आये। धन आपका जीवन नहीं लौटा सकता लेकिन प्रकृति, सुन्दर उज्ज्वल, निर्मल प्रकृति आपको दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन जरूर दे सकती है। यदि मनुष्य अभी भी नहीं समझा तो कोरोना काल में जिस अकेलेपन और अवसाद की पीड़ा को भोगा है वह सतत् चलती रहेगी। ''चेहरे पर पत्तों की मृत्यु लिए हुए/चिड़ियाँ अपने हिस्से की आवाजें/कर चुकी हैं/लोग जा चुके हैं/रोशनियाँ राख हो चुकी हैं/घरों के दरवाजे बन्द हैं/ मैं आवाज देता हूँ/और वहीं लौट आती है मेरे पास।''[10] कवि की इन पंक्तियों से सहज अनुमान लगा सकते हैं कि सब कुछ होते हुए भी हर तरफ भून्य ही भून्य दृष्टिगत होगा, फिर यह विकास और उन्नति किसके लिए ?

कोरोना के इस संकट का एक उजला पक्ष भी है जिसमें प्रकृति संतुलन बना रही है और उसने स्वयं को स्वच्छ और स्वस्थ रखने का बीड़ा उठाया है। कोरोना के इस अवसर ने सभी जीव–जन्तुओं, प्रकृति तथा पर्यावरण के लिए संजीवनी का काम किया। ''प्रकृति रहीं दुर्जेय और हम सब से निरूपाय।'' 'कामायनी' की ये पंक्ति आज कितनी सटीक है। हमारी अति के कारण प्रकृति ने अपना न्याय कर ही लिया। प्रकृति के अत्यधिक दोहन के दंड स्वरूप ही यह परमात्मा का न्याय है। ''मंगलमय विभु अनेक अमंगलों में कौन–कौन से मंगल छुपाए रहता, हम क्षुद्र मानव उसका क्या अनुमान लगा सकते हैं।'' (जयशंकर प्रसाद)। कोरोना काल में जहाँ मानव जीवन त्राहिमाम् कर कराह रहा था। वहीं प्रकृति में पशु–पक्षी, नदियाँ, सागर, वन, वृक्ष, धरती, आकाश उन्मुक्त रूप से भवास ले रहे थे। वर्षों बाद चहकती हुई गौरैया छत पर फुदकती दिखाई दी। नदियों के स्वच्छ जल–तल में सब कुछ साफ दिखने लगा। प्रदूषण मुक्त आकाश में तारों को निहारना सुखद प्रतीत होने लगा और ''नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।/चंद्र सूर्य युक्त मुकुट मेखला रत्नाकर है/नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारा मंडल है/ बंदीजन खगवृंद भोषफन सिंहासन है।''[11] आज प्रकृति के सन्दर्भ में कवि की ये पंक्तियाँ प्रासंगिक लग रही हैं हमारे प्राचीन वैदिक साहित्य में सभी के लिए कल्याण की भावना व्यक्त है। ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे भवन्तु निरामया।'' मनुष्य को यह ध्यान रखना है कि जीवन नियमों से बंधा होना चाहिए। अनुशासन रहित जीवन पशु के समान है। पशु भी प्राकृतिक नियमों से संचालित होते है लेकिन मानव भौतिकवादी जीवनशैली को अपना कर अपना ही नाश कर बैठा है। आत्मबल बढ़ाने तथा भारीर में रोग–प्रतिरोधक क्षमता पैदा करने के लिए कवि तुलसीदास जीवन में नियम, धरम, आचरण, तप, ज्ञान, यज्ञ जप तथा दान को धार्मिक औषधियाँ मानते हैं। सात्विक एवं आध्यात्मिक जीवनशैली अपनाकर मनुष्य कोरोना जैसे वैश्विक संकटों से मुक्त हो सकता है। यह समय प्रकृति का आभार प्रकट करने का है। उसने जैसा सुन्दर सौभाग्यवान जीवन हमें दिया है, हमें भी उसे वैसा ही लौटाना है। प्रकृति का कल्याण वास्तव में हमारा ही कल्याण है। आज मनुष्य को पुनः जीवन–मूल्यों को संचरित करना है और चिन्ता से आनन्द की ओर, अलगाव से एकता की ओर, संकट से सेवा की ओर तथा तप से जीवन की ओर लौटना है। प्रकृति का संरक्षण, उन्नयन और विकास वास्तव में हमारा ही विकास है। प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और अपने उत्तरदायित्व को समझकर हम सब कोरोना जैसी महामारियाँ का सामना कर सकेंगे और सामाजिक समता के साथ बेहतर जीवन जी सकेंगे। सकारात्मक चिन्तन और मानव हित का ध्यान रखने में साहित्य सदैव जागरण का संदेश देता रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंत, सुमित्रा नन्दन (1928), पल्लव : मौन निमंत्रण कविता, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ–65
2. वर्मा, कृष्णचन्द्र (1972), छायावादी काव्य, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ–209
3. पंत, सुमित्रा नन्दन, (1928), पल्लव : परिवर्तन कविता, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ–150
4. प्रसाद, जयशंकर (1989), कामायनी : कर्म सर्ग, कलावंत प्रकाशन भााहजहाँपुर, पृष्ठ–47
5. पति, ज्ञानेन्द्र (1999), गंगातट : नदी और साबुन–1, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ–20
6. पति, ज्ञानेन्द्र (2002), संशयात्मा काव्य संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
7. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी (2004), कुल्लीभाट, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ–125
8. कश्यप, मदन (2019), कोरोना में कवि, वाम प्रकाशन, नई दिल्ली
9. कमल, अरुण (1996), नए इलाके में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–30
10. डबराल, मंगलेश (2009), पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ–61
11. गुप्त, मैथिलीशरण (2007), भारत–भारती मातृभूमि कविता, साहित्य सदन प्रकाशन, झाँसी, पृष्ठ–42

❖◆❖